सद्यः श्रेयस्करी शरणागति

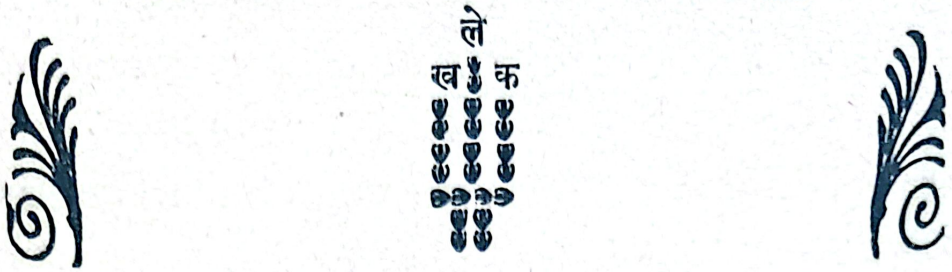

लेखक

श्री श्रीकान्तशरण जी महाराज

जगद्गुरु श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान् की शरणागति से अपने उभयलोक कल्याण का सम्पादन करके अनुभूत विचार कहाहै-

'बिगरी जन्म अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥'

श्रीतुलसीदासजी कहते हैं कि 'यदि तू बुरा समाज छोड़कर श्रीराम जी का (उनकी शरण) होकर उनके नाम का जप करे तो तेरी अनेक जन्मों की बिगड़ी हुई परिस्थिति आज ही नहीं, अभी (इसी क्षण) सुधर जाय।'

यहाँ, अनेक जन्मों के साधनों से प्राप्त होने योग्य परमगति की तत्काल प्राप्ति में तीन ही उपाय कहे गये हैं-(१) तजिकुसमाज (२) होहि राम को और (३) नाम जपु। इनका कुछ विवेचन आगे किया जाता है-(१) 'तजि कुसमाज' यथा-

'सुत, दार, अगारु, सखा,
परिवारु विलोकु महा कुसमाजहि रे।
सबकी ममता तजि कै, समता सजि, संत सभा न
विराजहि रे॥'

'पुत्र' स्त्री, घर, मित्र और परिवार (में आशक्ति) को महान् कुत्सित समाज देखिये; अतः इन सबकी ममता छोड़कर और समता दृष्टि रखकर संतों की सभा में क्यों नहीं विराजमान होते ?'

ये सुत-दार आदि यदि श्रीराम भक्ति में बाधक हों तो स्वरुपतः भी त्याज्य हैं; यथा-

'जरउ सो संपति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ॥'

'जाके प्रिय न राम बैदेही।
तेहि छांड़िये कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही॥

अन्यथा इनसे यथोचित बर्ताव रखते हुए इनमें ममता का ही त्याग करना चाहिये; इससे राग-द्वेष से हृदय की शुद्धि रहती है। ममता त्याग की व्यवस्था भी श्रीराम जी ने शरणागत विभीषण से कही है-

'जननी जनक बन्धु सुत दारा।
तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सबके ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहि बाँधि बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं।
हरष शोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे।
लोभी हृदय बसइ धनु जैसे॥

अर्थात जगत् श्रीराम जी का शरीर है। जैसे शरीरी जीव की प्रेरणा से उसके हाथ पैर आदि अङ्ग प्रत्येक कार्य में प्रवृत्त होते हैं, वैसे ही जगन्मात्र के शरीरी श्रीराम जी के शरीर रूप ये जननी-जनक आदि उनकी ही प्रेरणा से वात्सल्य आदि गुणों से मेरा पालन पोषण करते हैं। अतएव जिन उपकारों के प्रति इन सब में ममता है, वे उपकार

तो श्रीराम जी ने ही करवाये हैं, तब इनसे ममता छूटकर श्रीराम जी में होगी और फिर प्रीतिपूर्वक उनकी भक्ति दृढ़ होगी तथा जगत् के प्रति समता भी अनायास आ जायगी, क्योंकि यह बोध हो जायगा कि सारा जगत् एक श्रीरामजी का ही शरीर है और सबके द्वारा मेरे कर्मानुसार वे ही हित अनहित के बर्ताव करवा रहे हैं। अतः न कोई मेरा हितैषी है और न शत्रु, सुख दुःख की प्राप्ति में मेरे कर्म ही हेतु हैं। तब एक शरीर के व्यष्टि-अङ्गों में परस्पर समत्व के समान सबमें समत्व रहेगा। यही जगत् के प्रति विवेक दृष्टि है। तथा-

'जननि, जनक, गुरु, बंधु, सुहृद, पति, सब प्रकार हितकारी। द्वैत रूप तम कूप परौं नहिं अस कछु जतन विचारी॥'

अर्थात् जननीजनक आदि के रूप से आप ही मेरे सब उपकार कर रहे हैं, यह ज्ञान जगत् के प्रति अद्वैतदृष्टि का है और इसके विरुद्ध ये जननी आदि मेरे स्वतंत्र उपकारी हैं एवं शत्रु आदि स्वतंत्र अपकारी हैं;यह अज्ञान द्वैतदृष्टि का है; यह दृष्टि-तम कूप में डालने वाली है।

इस समता वृत्ति से जगत् के प्रति उदासीन भाव करके सबसे ममता छोड़कर श्रीराम जी में ममता दृढ़कर उनकी भक्ति करनी चाहिये। इसकी दृढ़ता के लिए उपर्युक्त प्रमाण में 'संत सभा न विराजहि रे' कहा गया है; तथा-

'सेवत साधु द्वैत भय भागै।
श्रीरघुबीर चरन लय लागै॥
देह जनित विकार सब त्यागै।
तब फिरि निज स्वरूप अनुरागै॥'

संत सभा से यह जाना जाता है कि उक्त विवेक भगवान् को उपाय रूप में वरण करते हुए उनकी शरणागति से ही होता है; यथा-

'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥'

अर्थात् मेरी यह गुणमयी दैवी माया निस्संदेह दुस्तर है; (पर जो) एक मात्र मेरी शरण ग्रहण कर लेते हैं, वे इस माया से तर जाते हैं।

इसलिए आगे श्रीगोस्वामी जी शरण होने की बात कहते हैं-

(२) 'होहि राम को'-अपने शरीर एवं तत्सम्बन्धी पदार्थों को श्रीराम जी के चरणों में अर्पण कर उनका हो जाना शरण होना है, यथा-

'योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिदिहलोके परत्र च।
तत्सर्वं भवतोरेव चरणेषु समर्पितम्॥'
(नारद-पञ्चरात्र)

क्योंकि जीव ईश्वर का सनातन अंश है, वह माया वश ही अज्ञान से मन आदि इन्द्रियों को आकर्षण करता है (गीता १५।७)।

जब विवेक से जानकर अपने अंशी को यह आत्म समर्पण करता है, तब भगवान् (गीता ४।११) के प्रतिज्ञानुसार इसका कुल भार ले लेते हैं। शरणागत विभीषण के प्रति विचारविमर्श में आपने अपना सनातन व्रत कहा है; यथा-

'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

'एक बार ही दीन होकर 'मैं आपका हूं' इस प्रकार याचना करने वाले सब प्राणियों के लिए (एवं सब प्राणियों से) मैं अभय देता हूं, यह मेरा व्रत है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम जी ने यह प्रतिज्ञा-सर्वतीर्थपति समुद्र के तट पर एवं असंख्य वानर-भालू रूप पार्षदों (भक्तों) के समक्ष की है। अतः इसका बड़ा महत्व है। वैष्णवाचार्यों में यह श्लोक शरणागति का चरम मन्त्र माना गया है। अतः इसके पदों के कुछ विशेष भाव कहे जाते हैं-

'सकृत एव'-इस पद द्वय से शरणागति में पुनरावृत्ति का निषेध किया गया है। ब्रह्मसूत्र (४।१।१।) में उपासना की आवृत्ति बार बार करनी कही गयी है, परन्तु प्रपत्ति तो एक ही बार की जाती है, इसीलिए 'सत्कृत्' पद के साथ 'एव' भी लगा है। जैसे विवाह-विधि में कन्या का पाणिग्रहण वर एक बार कर लेता है तो वह उसका आजन्म निर्वाह करता है; वैसे ही शरणागति का आजन्म निर्वाह एवं अन्त में उसकी सद्गति दान श्रीराम जी करते हैं; वह शरणागत निश्चिन्त रहता है। (बाल्मी० ४।५।११,१२,१५) में श्रीसुग्रीव जी की शरणागति के प्रसंग में प्राणिग्रहण में शरण होने का भाव स्पष्ट रूप में है। यही बात आगे इसी श्लोक की 'ददामि' इस वर्तमानकाल की क्रिया से भी सिद्ध है कि इसी जन्म की इस एक बार की शरणागति में ही उसे अभय पद (मोक्ष भी प्राप्त हो जाता है।

'प्रपन्नाय'-इस पद के अनुसार दीन होने पर हाथ जोड़ना होता ही है। अतःइसमें 'कायिकी प्रपत्ति' का भाव है और दीनता में 'मानसी प्रपत्ति' भी है।

'तवास्मि इति च याचते'- मैं 'आपका हूं' इस याचना में 'वाचकी' 'शरणागति' का भाव है। इस 'तवास्मि' की पुष्टि में अन्यत्र भी कहा गया है-

'तू मेरो यह बिनु कहे उठिहौं न जनम भरि।'
'वारक' कहिये कृपाल तुलसिदास मेरो'
(विनयपत्रिका ७८)

तात्पर्य यह कि मुमुक्षु मुह से तो कह देता है, कि मैं आपका ही हूं,परन्तु वैसी हार्दिक वृत्ति इसकी सदा नहीं रह पाती। अतः, इस सामर्थ्य की याचना यह स्वामी से करता है।

'अभयं सर्व भूतेभ्यो ददामि'-लोक में उसे सब प्राणियों से अभय मिलता है और ऋण त्रयाधिकारियों से भय नहीं रहता, यमराज एवं ईश्वर से भी उसे भय नहीं रहता; क्योंकि अभय पद मोक्ष प्राप्ति का भी बोधक है-

'अथ सोऽभयंगतो भवति।' (तैत्ति० २।७)

इस श्रुति में अभय पद मोक्ष परक है। भागवत (११।५।४१) में शरणागत को ऋणत्रय से मुक्त भी कहा गया है। सब प्राणियों से अभय तो सबका ईश्वर ही कर सकता है, इस प्रकार श्रीराम जी ने माधुर्य में भी अपना ऐश्वर्य प्रगट कर दिया है कि शरणागतों को भरोसा हो जाय, यथा-

'सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः।'
(वृह० ४-४-२२)

अर्थात् ईश्वर रामजी सबको वश में रखने वाले, सबके प्रेरक और स्वामी हैं। इसमें 'सर्वभूतेभ्यः' यह पद चतुर्थी और पञ्चमी विभक्ति का है। पञ्चमी के भाव ऊपर आ गये। चतुर्थी परक भाव यह है कि यहाँ पर आये हुए विभीषण के ही लिये यह कथन नहीं है, सब प्राणियों के लिए है, सभी को शरण आने पर अभय प्राप्त होगा। 'एतद्व्रतं मम'-यहाँ 'मम' पद से प्रभु ने अपना सामर्थ्य प्रगट करते हुए अपना व्रत कहा है कि सामान्य मनुष्य भी अपने व्रत (प्रतिज्ञा) की रक्षा करता है, फिर मैं तो माधुर्य दृष्टि से सत्यप्रतिज्ञ श्रीदशरथजी का पुत्र हूं। अतः मैं सत्यप्रतिज्ञ रह कर ही शोभा पा सकता हूं। तथा-

'रामो द्विर्नाभिभाषते।' (बाल्मी० ३।१०।१८)

अर्थात् श्रीराम जी दो बार नहीं बोलते; जो बोलते हैं, वही करते हैं।

'अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥'
(बाल्मीकि ३।१०।१८)

अर्थात् हे सीते! मैं प्राण छोड़ सकता हूं,लक्ष्मण के साथ तुम्हें छोड़ सकता हूं, परन्तु विशेषकर

ब्राह्मणों के लिए की हुई प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ सकता।

ऐश्वर्य दृष्टि से मैं सत्य संकल्प ईश्वर हूं, मेरे संकल्प से ही जगत् के उत्पत्ति, पालन और संहार-रूप कार्य होते रहते हैं, तब यह मेरी प्रतिज्ञा कैसे अन्यथा हो सकती है?

यह व्रत श्रीराम जी का सनातन है, क्योंकि इस विभीषण शरणागति के पूर्व भी वाल्मीकि (३।१।२०-२१) में दण्डक बन के ऋषियों ने 'ते वयं भवता रक्ष्या···' कहकर इसी प्रतिज्ञा के आधार पर शरणागति की है और उसी पर श्रीराम जी ने सर्व राक्षस वध की प्रतिज्ञा की है। जयन्तशरणागति प्रसङ्ग में भी श्रीनारद जी ने इसी प्रतिज्ञा के आधार पर जयंत की शरणागति करायी है; तथा-

'आऐ सरन भजौं न तजौं तेहि यह जानत ऋषिराउ'

(गीतावली)

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि 'मैं आपका हूं' यह कहकर जो भी श्रीराम जी के शरणागत हो जाता है, उसके लोक-परलोक का सारा भार श्रीराम जी ले लेते हैं।

(३) 'नाम जपु'-शरण होने पर शरणागत का कालक्षेप कहते हैं कि वह श्रीराम नाम का जप किया करे। शरणागति के छः भेद हैं। यथा-

'आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्व वरणं तथा॥
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः।'

(नारद पञ्चरात्र)

इनमें नाम जप प्रथम एवं प्रधान अङ्ग 'आनुकूल्यस्य संकल्प' का साधन है। नाम जप की प्रधानता में रूप का ध्यान और उसके अर्थ मनन में लीला भी रहती है। इससे मुमुक्षु के हृदय के संकल्प श्रीराम परक ही होने लगते हैं। यथा-

'रामेति रामेति सदैव बुद्ध्या विचिन्त्यवाचाब्रुवती तमेव। तस्यानुरूपं च कथां तदर्थामेवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि॥ विचिन्तयन्ती सततं तमेव तथैव पश्यामि तथा शृणोमि। मनोरथः स्यादिति चिन्तयामि·····॥' (वाल्मी० ५।३२।११-१३)

अर्थात् मैं श्रीराम जी को ही सदा अपनी बुद्धि में सोचा करती हूं, और मुँह से राम-राम कहा करती हूं, इसी से अपने विचारों के अनुरूप यह कथा सुन रही हूं तथा देख रही हूं।·····मैं सदा श्रीराम का ही चिन्तन करती रहती हूं, इससे वैसा ही देखती और सुनती हूं। यह मेरा मनोरथ ही हो सकता है, ऐसा सोचती हूं। यह नाम जप करती हुई श्रीजानकी जी का लङ्का में अनुमान है।

प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ···'।-

उपर्युक्त 'तजि कुसमाज' में आ गया है। शेष-स्वामी रक्षा करेंगे इसका विश्वास, रक्षार्थ स्वामी से कहना, आत्मनिक्षेप और कार्पण्य-ये नाम जप की प्रधानता में स्वयं प्राप्त विवेक से होते रहते हैं; जैसे राम नाम जापक प्रह्लाद भक्त में सब लक्षण स्वतः आ गये थे।

'अब ही आजु'-आज नहीं, प्रत्युत इसी क्षण सुधर जायगी। यह कथन सहसा आश्चर्य जनक है। गीता (६।४५) में जो गति अनेक जन्मों के साधनों से मिलने वाली कही गयी है, वही गति एक क्षण में मिल रही है। यह कैसे? इसकी व्यवस्था यों होती है कि इस मुमुक्षु के शरण होते ही इसके करोड़ों जन्मों के संचित पापों का तो तुरन्त नाश हो जाता है। यथा-

'सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नाशहि तबहीं॥'

(रा० च० सुन्द० ४३)

'क्षीयन्तेचास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।'

(मुण्डक० २।२।८)

शरण होने पर यह प्रभु का होकर उनकी सेवा रूप में ही कर्म करता है। इससे वे कर्म इसे फलप्रद होते ही नहीं। ज्ञान पूर्वक शरणागत जानकर पाप करता ही नहीं; यदि चूक (अनजान) में उससे पाप हो जाते हैं तो प्रभु उन्हें क्षमा कर देते हैं-

'रहति न प्रभु चित चूक किये की।
करत सुरति सयवार हिये की॥'

(रा० मा० बा० २८)

शेष प्रारब्ध कर्म भी भोग देकर समाप्त हो जाता है। भोगकाल में भगवान् इसे विवेक देकर शान्ति पूर्वक भोग करा देते हैं। इस प्रकार इसके शरण होते ही भगवान् इसका कुल भार ले लेते हैं। यही तुरन्त इस की दशा का सुधरना है। क्योंकि उसी समय इसके उक्त सुधार के विषय में सत्संकल्प भगवान् का संकल्प हो जाता है। इसके कुछ उदाहरण लिखे जाते हैं-

(क) श्री द्रौपदी जी (महा० सभा० ६८।४१-४५ में) शरण हुई। तुरन्त भगवान् ने बस्त्र बढ़ाकर उनकी तत्कालिक रक्षा कर दी; साथ ही उनके शत्रुओं के संहार का भी संकल्प कर लिया। यथा-

'त्राहि तीनि कह्यो द्रौपदी तुलसी राज समाज।
प्रथम बढ़े पट,बिय बिकल चहत चकित निज काज॥'

(दोहावली)

अर्थात् महाभारत के इस प्रसंग के तीन श्लोकों में रक्षा के लिए तीन क्रियाएँ आई हैं। तदनुसार श्रीगोस्वामी जी ने भी तीन बार 'त्राहि' की बात लिखी है। उनके प्रथम 'त्राहि' कथन पर उनके वस्त्र बढ़ गये। दूसरी बार 'त्राहि' कहने पर भगवान् व्याकुल हो उठे कि अब क्या करूँ। जब द्रौपदी जी ने तीसरी बार 'त्राहि' कहा, तब भगवान् ने चकित होकर अपने कार्य (भू-भार-हरण) का संकल्प कर लिया। भगवान् सत्य संकल्प हैं; इससे कौरव-वर्ग उसी समय मृतक तुल्य हो गये। इसी से विराट रूप दिखाते हुए भगवान् ने कहा है-

'मयैवैते निहताः पूर्वमेवमयाहतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठाः'

पुनः भगवान् जब पाण्डवों की ओर से दूत बनकर कौरवों के यहाँ गये थे, तब भी उन्होंने धृतराष्ट्र आदिक को संदेश भेजते हुए स्पष्ट कह दिया; यथा-

'ऋणमेतत्प्रवृद्धं हि हृदयान्नापसर्पति।
यद्गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनम्॥'

अर्थात् द्रौपती जी ने दूरवासी मुझको 'हे गोविन्द' त्राहि, इस प्रकार पुकारा है, उसका ऋण बढ़ता जाता है, मेरे हृदय से नहीं जाता। भाव यह कि मैंने उसी समय उसके विरोधियों के नाश करने का संकल्प कर लिया था; जितना बिलम्ब हो रहा है, उसका ऋण बढ़ता है; अवश्य मैं उससे उऋण होऊँगा। अतः मूल रूप में सभास्थित कौरव वंश का और व्याज रूप में उनकी सेनाओं का भी संहार कराऊँगा; क्योंकि सभा में द्रौपती जी के प्रति अन्याय होते हुए सभा में स्थित राजाओं ने उसकी रक्षा नहीं की, इससे वे पूर्ण अपराधी हैं। अतः वह मूल रूप और अंगभूता उनकी सेनायें व्याज रूपा हैं। इससे सिद्ध है कि शरणागत के शरण होते ही भगवान् उसके उभय लोक सम्पन्न करने का सत्य संकल्प कर लेते हैं। द्रौपती अपने पतियों के साथ लोक में सुखी हुई, परलोक में भी सद्गति को प्राप्त हुई-महा० स्वर्गा० देखिये।

(ख) श्रीविभीषण जी के शरण होते ही उन्हें राजतिलककर लंकेश्वर पद दे दिया गया। फिर कुछ काल लीला मर्यादा के लिए युद्ध करके वह

कार्य सम्पन्न किया; फिर भी विभीषण जी के प्रगट धैर्य के लिए एक ही बाण से रावण के मुकुट, छत्र और मंदोदरी के ताटंक काटकर उसका सर्वनाश करने का आश्वासन भी दे दिया। परलोक में सद्गति देने का बचन भी प्रथम ही दे दिया–

'करहु कलपभरि राज तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माँहि।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाँहि ॥'

(ग) श्री सुग्रीव जी के भी शरण होते ही तुरन्त उनके शत्रु बालि को एक ही बाण से मार डालने का दृढ़ संकल्प कर लिया। फिर गाली सहकर भी उस कार्य को उसी रीति से पूरा किया, सुग्रीव जी का लोक सुख सम्पन्न किया। बाल्मीकि (७।११०) में उनके परलोक सुख-दान की बात भी देखिये।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि शरण होने पर भगवान शरणागत के लोक-परलोक सुधार का दृढ़ संकल्प तुरत कर लेते हैं। तथा–

'बिगरी जन्म अनेक की सुधरत पल लगै न आधु।
पाहि कृपानिधि प्रेम सों कहे को न राम कियो साधु।
(विनयपत्रिका)

प्रश्न–द्रौपती आदि के समक्ष भगवान् थे, इससे शरण होकर उन्होंने लाभ उठाये; आज दिन कैसे लाभ हो सकता है ?

उत्तर–आज दिन भी भगवान् अपनी पूर्ण शक्ति के साथ अर्चा रूप में वर्तमान हैं। शरणागत को उनकी शक्ति उनके नाम एवं मन्त्र द्वारा प्राप्त होती है और मन्त्रार्थ द्वारा उनका आश्वासन भी प्राप्त होता है–जैसे चोरी खोलने की विद्या में ख्यात ज्योतिषी का नाम लेने पर चोरी करते हुए चोर भय से माल छोड़कर भाग जाते हैं। वहाँ ज्योतिषी की विद्या शक्ति उसके नाम के द्वारा जाकर चोरों को भगाती है। वैसे ही भगवान् के शरण-रक्षण आदि गुण उनके नाम एवं मन्त्र द्वारा जापक के हृदय में प्राप्त होकर भगवान् का ही कार्य करते हैं। अतः मुमुक्षु को दृढ़ विश्वास पूर्वक शरण होकर, भगवान् पर निर्भर रहकर, अपने लोक परलोक का कल्याण सम्पादन करना चाहिये।

❋ प्रभु के सुख-प्रद चरण ❋

जाउँ कहाँ तजि चरण तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥१॥
कौने देव बराइ बिरद-हित, हठि हठि अधम उधारे।
खग-मृग, ब्याध, पषान, बिटप जड़, जवन कवन सुर तारे ॥२॥
देव, दनुज मुनि, नाग, मनुज सब माया-बिवस बिचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे ॥३॥